बंधन – छूटन
भाग १ & २

१. **धार्मिक बंधन –**

सीमित दिमागी ज्ञान, अधूरे गलत निश्चयों तथा धार्मिक भ्रमों द्वारा — अगम्य, अपार, अखण्ड, सर्वव्यापक, सर्वसांझे, ज्योति स्वरूप 'परमात्मा' को हमने **सीमित अस्तित्व मान कर – 'बँटवारे' किये हुए हैं।**

सभे साझीवाल सदाइनि तूं किसै न दिसहि बाहरा जीउ ॥ (पृ. 97)

खत्री ब्राहमण सूद वैस **उपदेसु चहु वरना कउ साझा** ॥ (पृ. 747,748)

इसके अतिरिक्त गुरुओं तथा अवतारों के **सर्व साँझे आदेशों तथा उपदेशों अथवा 'धर्मों'** को भी हमने 'धार्मिक संकीर्णता' द्वारा, तोड़मरोड़ कर स्वयं घड़े कर्मकाण्डों तथा नियमों के **'बंधन' में जकड़ दिया है।** इसी कारण हमारे धार्मिक जीवन में **'कट्टरता'** इतनी बढ़ गयी है कि हम अपनी – अपनी दृढ़ की हुई धार्मिक धारणाओं के **सीमित दायरे से बाहर** अन्य किसी धर्म की बात सुनने के लिए तैयार ही नहीं।

इन **'धार्मिक बंधनों'** में हम इतने जकड़े हुए हैं कि हमारा 'धार्मिक जीवन' अति कठिन, कट्टर तथा दुखदायी हो गया है।

दूसरे **धर्मों** के लिए हमारे अंदर **'सहनशीलता'** बिल्कुल ही नहीं रही, जिस कारण प्रायः, 'धार्मिक तअस्सुब' द्वारा, **धर्म के नाम पर**, परस्पर वादविवाद, खींचतान, वैरविरोध, लड़ाईझगड़े, खूनखराबे तथा अकथनीय अत्याचार होते रहते हैं।

इस प्रकार हम ने **'धर्मों' अथवा 'मज़हबों' में बँटवारे कर**, धार्मिक कट्टरता द्वारा उन्हें **इतने तंग दायरे में जकड़ दिया है** (air tight compartments) कि एक ही धर्म के **अलगअलग गुट, सम्प्रदाय, 'भेष' आदि बन रहे हैं,** जिस कारण **इन गुटों में भी आपसी वादविवाद,** निंदा, वैरविरोध,

लड़ाई-झगड़े होते रहते हैं।

उठे गिलानि जगति विचि वरते पाप भिसटि संसारा ।

वरना वरन न भावनी

खहि खहि जलन बांस अंगिआरा । (वा.भा.गु. 1@17)

सचु किनारे रहि गइआ **खहि मरदे बाहमण मउलाणे ।**(वा.भा.गु. 1@21)

बहता पानी यदि **छोटे-छोटे पोखरों में कैद हो जाये,** तब धीरे-धीरे वह निर्मल पानी **दूषित हो कर हानिकारक बन जाता है।**

इसी प्रकार जब 'मानवता' (humanity) का **बँटवारा कर, सीमित धार्मिक सम्प्रदायों** के, स्वयं घड़े नियमों तथा कर्म-काण्ड के **बंधनों में जकड़ा जाता है**— तब **सर्व-सांझी दिव्य 'मानवता' में** धार्मिक तअस्सुब, ईर्ष्या, द्वेत, वैर-विरोध की **ग्लानि आ जाती है ।**

इसी प्रकार निम्नलिखित, उत्तम आत्मिक उपदेशों को हम **भूल जाते हैं —**

ना को बैरी नही बिगाना

सगल संगि हम कउ बनि आई ।। (पृ. 1299)

कोऊ भइओ मुंडीआ संनिआसी कोऊ जोगी भइओ

कोऊ ब्रहमचारी कोऊ जतीअन मानबो ।।

हिंदू तुरक कोऊ राफज़ी इमामसाफी

मानस की जात सबै एकै पहिचानबो ।।

(अकाल उसतति पा: 10)

इन उपदेशों के **ठीक 'विपरीत'**— हमने मज़हबी संकीर्णता के कारण **'मानवता' को छिन्न-भिन्न कर दिया है,** जिसके परिणाम स्वरूप समस्त विश्व में, चारों ओर **धार्मिक तनाव वैर-विरोध, खून-खराबे का बोलबाला तथा बरताव हो रहा है।**

10. **आध्यात्मिक बंधन** — ये 'बंधन' **अति सूक्ष्म, कोमल तथा गुप्त** होने के कारण जिज्ञासु को अपने आप इनकी **सूझ नहीं आ सकती** — वह अपनी समझ से जप, तप, पूजा, पाठ, योग-साधना तथा अनेक प्रकार की साधनाएँ साधता है — जिससे रिद्धियाँ-सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं तथा उनके चेले-चपाटे बन जाते हैं। इन

रिद्धियों&सिद्धियों की शक्ति द्वारा उनके **सूक्ष्म अहम् को 'फूक' मिलती रहती है** तथा वे करामात दिखाने लगते हैं, वर&श्राप भी देने लगते हैं जिससे जरूरतमंद लोग आकर्षित होते हैं। इस प्रकार सहज&स्वभाव, अचेत ही, जिज्ञासु के मन में **सूक्ष्म 'मान&बढ़ाई' आ जाती है** । इस मान बढ़ाई तथा प्रतिष्ठा से उसे मानसिक **अंहकार का 'नशा' चढ़ जाता है** तथा वह भला&भद्र, साधु, संत, महन्त, आचार्य, गुरू, अवतार, 'श्री 108' आदि कहलाने लगता है।

इस **'सूक्ष्म अहम्' के 'नशे' का आनन्द लेने के लिए** वे योग&साधना से सैंकड़ो वर्ष **उम्र बढ़ा लेते हैं** । इस प्रकार वे निश्चित ही उच्च पवित्र **आत्मिक भक्ति के आदेश तथा उद्देश्य से दूर होते जाते हैं।**

कबीर सिख सारवा बहुते कीए केसो कीओ न मीतु ।।
चाले थे हरि मिलन कउ बीचै अटकिओ चीतु ।। (पृ. 1369)

इस 'मान&बढ़ाई' के सूक्ष्म 'नशे' में जिज्ञासु इतना गलतान तथा अलमस्त हो जाता है कि वह अपनी **'आत्मिक मंज़िल' को कतई भूल जाता है**— जिससे उसकी आत्मिक **उन्नति रुक जाती है** तथा अवनति की ओर रुख कर लेती है। फिर धीरे&धीरे वह अनजाने ही **रसातल की ओर बहता जाता है**। ऐसे जिज्ञासु को अपनी इस मानसिक तथा आध्यात्मिक **अधोगति का अहसास ही नहीं होता ।**

इस प्रकार वह डेरा, सम्प्रदाय, ठाट&बाट, धार्मिक सम्प्रदाय बना कर इसी में गलतान होकर, गृहस्थियों की भाँति, **अहम् की मान&बढ़ाई के नशे में मस्त हो जाता है तथा अपनी आत्मिक मंजिल भूल जाता है।**

इस श्रेणी में 'वली कंधारी' 'नूर शाह' 'गोरख नाथ' आदि, अनेक योगी आते हैं ।

इस सूक्ष्म 'मान&बढ़ाई' के सूक्ष्म **'आध्यात्मिक गढ़'** को कोई महापुरुष अथवा पूरा सतिगुरु ही आत्मिक शक्ति द्वारा तोड़ सकता है — जिस प्रकार गुरू नानक साहिब ने 'नूर शाह' आदि, अनेक योगियों को **आध्यात्मिक बंधनो की कैद में से मुक्त कर उनका आत्मिक कल्याण किया ।**

सिधु होवा सिधि लाई रिधि आखा आउ ।।

गुपतु परगटु होइ बैसा लोकु राखै भाउ ।।

मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ।। (पृ. 14)

रिधि सिधि सभु मोहु है नामु न वसै मनि आइ ।। (पृ. 593)

बिनु नावै पैनणु खाणु सभु बादि है

धिगु सिधी धिगु करमाति ।। (पृ. 650)

तिआगि गोपाल अवर जो करणा ते बिखिआ के खूह ।। (पृ. 1227)

कबीर सिख साखा बहुते कीए केसो कीओ न मीतु ।।

चाले थे हरि मिलन कउ बीचै अटकिओ चीतु ।। (पृ. 1369)

जत सत संजम होम जग जपु तपु दान पुंन बहुतेरे ।

रिधि सिधि निध पाखंड बहु तंत्र मंत्र नाटक अगलेरे ।

वीराधण जोगणी मड़ी मसाण विडाण घनेरे ।

पूरक कुंभक रेचका निवली करम भुइअंगम घेरे ।

सिधासण परचे घणे हठ निग्रह कउतक लख हेरे ।

पारस मणी रसाइणा करामात कालख आन्हेरे ।

पूजा वरत उपारणे वर सराप सिव सकति लवेरे ।

साध संगति गुर सबद विणु थाउ न पाइनि भले भलेरे ।

(वा. भा. गु. 507)

11. **संस्कारों के बंधन —** प्रत्येक जीव अकाल पुरुष की अंश होने के नाते **'ज्योति स्वरूप'** है।

अकाल पुरुष ने इस सृष्टि की रचना की तथा इसकी प्रवृति के लिए **माया का भ्रम भुलाव रच दिया**— इससे जीव को अपना **'पृथक अस्तित्व' — 'अहम्' का अहसास हुआ।**

इस प्रकार **अनन्त आत्मिक 'अस्तित्व'— 'अहम्' के सीमित भ्रम/भुलाव में 'कैद' हो गया तथा जीव 'अहम्मयी कर्मों' के बंधन में फँस गया।**

हउ हउ करत बंधन महि परिआ नह मिलीऐ इह जुगता ।।(पृ. 642)

दूसरे शब्दों में 'जीव' अपने आप को अकाल पुरुष से पृथक 'अस्तित्व' समझने लगता है तथा अपनी नन्हीं सी **'अहम्' में 'कर्मबद्ध' हो जाता है।**

काम/क्रोध/लोभ/मोह/अंहकार आदि, **पाँच वैरियों** के अधीन— 'जीव' सोचता, विचारता, कर्म करता तथा परिणाम भोगता है।

तुच्छ विचारों तथा कर्मों के **अभ्यास से** ये **तुच्छ अंश**— मन की गहराईयों में उतर कर **धँस/बस कर समा जाते हैं** तथा इनकी **'सामूहिक रंगत'** ही हमारा **'मानसिक आत्म'** बन जाती है।

हमारे 'मानसिक आत्म' को समझने के लिए इसे तीन तहों में बाँटा जा सकता है—

1. **ऊपरी मन** या **'मैं/मेरी' का आत्म**— जो हमारे दैनिक जीवन में प्रवृत्त होता है।
2. **मध्यस्थ आत्म** — जो हमारे गहन विचारों तथा **कर्मों** में प्रवृत्त होता है।
3. **अन्तःकरण** — यह गहरा तथा सूक्ष्म गुप्त संस्कारिक 'आत्म' हमारे पूर्व जन्मों तथा कर्मों की **सामूहिक रंगत का 'निचोड़' अथवा 'भड़ास' है।** इस पर **इस जन्म के विचारों तथा कर्मों की 'रंगत' का प्रतिबिम्ब भी साथ/ही/साथ पड़ता जाता है।**

हमारा **'उपरी' तथा मध्यस्थ** मन तो सतसंगत के दैवीय प्रभाव से **बदल सकता है** — परन्तु हमारे **'संस्कारिक आत्म' पर ऊपरी दिमागी ज्ञान, ध्यान तथा चतुराई का कोई प्रभाव नहीं होता — क्योंकि 'दृढ़' हुए 'संस्कारों' का प्रतिबिम्ब** (reflection) **हमारे जीवन के हर पक्ष में अनजाने ही अवश्य पड़ता रहता है** जिससे ये **'संस्कार'** हमारे ख्यालों, चिंतन तथा कर्मों पर **हावी होकर दृढ़ होते जाते हैं।**

उदाहरण स्वरूप 'शराबी' का 'आत्म'— **'शराब' के अवगुणों का 'प्रतिबिम्ब' बन जाता है** जो उसकी बोलचाल, सोच, हरकतों, कर्मों में **सहज स्वभाव प्रत्यक्ष**

रूप से प्रकट होता रहता है।

यदि अपने घर में **गुप्त शत्रु** रहता हो तो वह हमारे लिए अत्यंत दुख क्लेश का कारण बन सकता है, क्योंकि उसकी 'गुप्त चाल' से हम अपरिचित होते हैं। इसी प्रकार हमारे अन्दर स्वयं रचे हुए गुप्त 'अहम्मयी' ख्यालों अथवा **सँस्कारों का हमें पता ही नहीं होता — जिस कारण इनसे कोई बचाव भी नहीं हो सकता।**

हमारे स्वयं अंगीकृत **'संस्कारिक बंधन' अति सूक्ष्म, प्रबल तथा दामनिक हैं,** जिनसे **हम बिल्कुल अनजान तथा लापरवाह हैं।** जब किसी कारण इन का **हमारे मन पर 'हमला' होता है, तब हम विवश हो कर ऐसे कर्म कर बैठते हैं जिनका हमें कभी ख्याल भी नहीं होता।**

यह मानसिक 'संस्कार' हमारे **पूर्व जन्मों के अनेक संस्कारों का 'संग्रह' है, जिसमें 'जीव' बुरी तरह 'कर्मबद्ध' हुआ है।**

'रेशम' का कीड़ा अपने अन्दर से ही तारें निकाल कर अपने चारों और जाल (cone) बना लेता है तथा फिर उसी में मर जाता है। इसी प्रकार जीव भी अपने ही **तुच्छ ख्यालों तथा अहम्मयी कर्मों द्वारा, अपने ही बनाये हुए तुच्छ तथा दुखदायी 'संस्कारों' में अनजाने ही कर्मबद्ध हो कर दुखक्लेश भोगता रहता है।** परन्तु आश्चर्य की बात है कि हमें अपनी इस **दयनीय अधोगति का अहसास ही नहीं !!**

गुरबाणी इस अधोगति को यूँ दर्शाती है—

बिनु बूझे करम कमावणे जनमु पदारथु खोइ ॥ (पृ. 33)

मनहठि करम कमावदे नित नित होहि खुआरु ॥ (पृ. 66)

नामु तिआगि करे अन काज ॥
बिनसि जाइ झूठे सभि पाज ॥
नाम संगि मनि प्रीति न लावै ॥
कोटि करम करतो नरकि जावै ॥ (पृ. 240)

करम धरम सभि बंधना पाप पुंन सनबंधु ॥ (पृ. 551)

अनिक करम कीए बहुतेरे ।।
जो कीजै सो बंधनु पैरे ।। (पृ. 1075)

कोटि करम बंधन का मूलु ।।
हरि के भजन बिनु बिरथा पूलु ।। (पृ. 1149)

इहु मनु धंधै बांधा करम कमाइ ।।
माइआ मूठा सदा बिललाइ ।। (पृ. 1176)

यह संस्कार— हमने अपने बुरे या अच्छे ख्यालों के **अभ्यास से स्वयं बनाये हैं।**

संसार में अपराधियों के लिए **जेल** (jails) बनी हुई है। इन जेलों के अन्दर कई बड़े-बड़े **'अहाते'** होते हैं । इन बड़े-बड़े अहातों के अन्दर अन्य छोटे-छोटे अहाते होते हैं। इन अहातों में कैदियों के जुर्म अनुसार उन्हें बन्द किया जाता है। इसके अलावा कुछ **'काल-कोठरियाँ'** (solitary cells) होती है, जिनमें खतरनाक कैदियों को बन्द किया जाता है । इन **'काल कोठरियों' की सज़ा अत्यन्त दुखदायी होती है क्योंकि इन 'काल कोठरियां' की एकान्त असह्य होती है।** इन काल कोठरियों से छुटकारा फाँसी द्वारा ही होता है।

ठीक इसी प्रकार सारा **'मानसिक मंडल' ही एक बड़ी 'जेल' या 'कैदखाना' है, जिसकी बाहर की दीवार 'अहम्' अथवा 'मैं-मेरी' की बनी हुई है,** जिसके अन्दर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अनेक **सूक्ष्म वाशनाओं के 'अहाते' होते है, जिनके बंधनों में जीव फँसा रहता है।**

काम क्रोधि लोभि मोहि बाधा ।।
महा गरत महि निधरत जाता ।। (पृ. 741)

हउ हउ भीति भइओ है बीचो सुनत देसि निकटाइओ ।।(पृ. 624)

अहम् से घिरा हुआ जीव कई जन्मों से इस **'हउमै भीत करारी'** (अहंकार की काल कोठरी) में कैद, तुच्छ वाशनाओं काम, क्रोध, लोभ, मोह के अधीन कर्म करता हुआ, **कभी किसी Ñ कभी किसी 'वाशनावी अहाते' अथवा 'मानसिक बंधन' में, जकड़ा रहता है तथा दुख भोगता है।**

हसती घोड़े देखि विंगासा ।।
लसकर जोड़े नेब खवासा ।।
गलि जेवड़ी हउमै के फासा ।। (पृ. 176)

बाधिओ आपन हउ हउ बंधा ।।
दोसु देत आगह कउ अंधा ।। (पृ. 258)

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि ।।
हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि ।। (पृ. 466)

हउमै विचि जीउ बंधु है नामु न वसै मनि आइ ।। (पृ. 560)

मेरी मेरी धारि बंधनि बंधिआ ।।
नरकि सुरगि अवतार माइआ धंधिआ ।। (पृ. 761)

करि अहंकारु होइ वरतहि अंध ।।
जम की जेवड़ी तू आगै बंध ।। (पृ. 889)

बंधन मात पिता सुत बनिता ।।
बंधन करम धरम हउ करता ।। (पृ. 1147)

यदि अपराधी औरत, कैद में बच्चे को जन्म दे, तब वह बच्चा **'जेल' के बंधन भरे वातावरण** में ही पलता तथा बड़ा होता है। वह **जेल के बंधन भरे 'वातावरण' का 'आदि' हो जाता है** तथा इसी में **इतना 'अभ्यस्त' हो जाता है कि बंधन भरा वातावरण ही उसका 'जीवन' बन जाता है।** वह इस दृढ़ हुए **'बंदी जीवन' अथवा 'कैदी जीवन' के अतिरिक्त अन्य किसी उँचे, श्रेष्ठ, स्वतन्त्र जीवन से अनजान होता है।**

इसी प्रकार जीव अनेक जन्मों से मानसिक रूप में 'अहम्' अथवा **'मैं मेरी' के बंधन में जकड़ा आता है।**

हम इन **'मायिकी बंधनों'** के इतने **'अभ्यस्त'** हो गये हैं या **आदी** हो गये हैं कि हमें अपने **'बंधनों' की 'कैद' का 'अहसास' ही नहीं रहा**— वैसे हम मायिकी बंधनों से अति दुखी होकर **'हाय हाय' करते रहते हैं परन्तु फिर ढीठ होकर नरकमयी जीवन भोगना — अपनी सयानप समझे बैठे हैं!!**

आजकल मज़्हबों के कई सम्प्रदाय बन गये हैं तथा इनका प्रचार भी बेअंत हो रहा है। कई प्रकार के धार्मिक समागम, योग साधना, जागरण, समाधि, अखाड़े तथा स्टॅडी सरकलों द्वारा अत्यन्त धर्म प्रचार हो रहा है जिसमें 'अहम्' तथा मैं॒मेरी के बंधनों के विषय में विचार होते हैं— परन्तु यह **सब प्रचार निष्फल जाता है क्योंकि हमारे अन्तःकरण में यह 'अहम्' तथा 'मैं॒मेरी' इतनी दृढ़ हो चुकी है कि हमें किसी प्रकार का बाहरी प्रचार —**

छूता ही नहीं
ऊपरी मन से 'हाँ॒हूँ' कर देते हैं
समझने या अनुभव करने की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती !!

गुरबाणी हमें इन **मानसिक बंधनों** के विषय में यूँ ताड़ना करती है—

मेरा तेरा जानता तब ही ते बंधा ।। (पृ. 400)

माइआ मोहि जगु बाधा जमकालि ।। (पृ. 412)

बंधन मात पिता संसारि ।।
बंधन सुत कंनिआ अरु नारि ।।
बंधन करम धरम हउ कीआ ।।
बंधन पुतु कलतु मनि बीआ ।।
बंधन किरखी करहि किरसान ।।
हउमै डंनु सहै राजा मंगै दान ।।
बंधन सउदा अणवीचारी ।।
तिपति नाही माइआ मोह पसारी ।।
बंधन साह संचहि धनु जाइ ।।
बिनु हरि भगति न पवई थाइ ।।
बंधन बेदु बादु अहंकार ।।
बंधनि बिनसै मोह विकार ।। (पृ. 416)

फफै फाही सभु जगु फासा जम कै संगलि बंधि लइआ ।।
(पृ. 433)

इहु कुटंबु सभु जीअ के बंधन भाई भरमि भुला सैंसारा ।।(पृ.602)

मनु जंजाली वेड़िआ भी जंजाला माहि ।। (पृ. 935)

उपजहि बिनसहि बंधन बंधे ।।
हउमै माइआ के गलि फंधे ।। (पृ. 1041)

मनमुख फिरहि सदा अंधु कमावहि
जम का जेवड़ा गलि फाहा हे ।। (पृ. 1053)

मिथिआ तनु साचो करि मानिओ
इह बिधि आपु बंधावै ।। (पृ. 1231)

अनगिनत — पाठ/पूजा करते हुए,
कर्म/काण्ड करते हुए,
योग/साधना करते हुए,
ज्ञान/गोष्ठी करते हुए,
फिलोस्फियाँ घोटते हुए,
उच्च विद्या पढ़ते हुए,
नवीन वैज्ञानिक आविष्कार करते हुए,
भले/भद्र बनते हुए,
धार्मिक डेरे चलाते हुए

भी हमें इन **मानसिक बंधनों का 'अनुभव' नहीं हो सका तथा इन बंधनों से छुटकारा पाने की आवश्यकता भी नहीं प्रतीत होती।**

गिआनु धिआनु सभु कोई रवै ।।
बांधनि बांधिआ सभु जगु भवै ।। (पृ. 728)

जिस प्रकार ब्याज पर ब्याज (compound interest) से कर्ज बढ़ता ही जाता है— कम नहीं होता। इसी प्रकार **अनेक/जन्मों से पड़े हुए 'मानसिक बंधनों' के सांकल हमारे अन्तःकरण में पल/पल बढ़ते ही जाते हैं, जिनका हमें पता ही नहीं अथवा 'अहसास' ही नहीं है।**

करम धरम सभि बंधना पाप पुंन सनबंधु ।।

ममता मोहु सु बंधना पुत्र कलत्र सु धंधु ।।

जह देखा तह जेवरी माइआ का सनबंधु ।। (पृ. 551)

हउमै विचि जीउ बंधु है नामु न वसै मनि आइ ।। (पृ. 560)

नानक अउगुण जेतड़े तेते गली जंजीर ।। (पृ. 595)

जो जो करम कीओ लालच लगि तिह तिह आपु बंधाइओ ।।

(पृ. 702)

अनिक भांति की एकै जाली ता की गंठि नही छोराइ ।। (पृ. 1302)

जब जीव का **अहम् अति तीव्र तथा सबल हो जाता है** तब वह **जंगलियों की भाँति इसमें खचित हो कर 'पशु वृत्ति' धारण कर लेता है ।**

करतूति पसू की मानस जाति ।। (पृ. 267)

तब ऐसे जीव स्वयं घड़ी **अहम् की कोठरी की खौफनाक 'एकान्त' में नरकमय जीवन भोगते हैं** तथा समयोपरांत भूत/प्रेतों की **अति लम्बी तथा डरावनी 'योनि' धारण करके नरक भोगते हैं।**

यदि हम कोई धार्मिक कर्म/काण्ड, पाठ/पूजा, योग/साधना, नेकियाँ, आदि करते भी हैं, तो **वह भी 'अहम्' अधीन ही किये जाते हैं।**

गुरबाणी की निम्नलिखित पंक्तियाँ. बताती है कि **'अहम्' में किये हुए कर्म/काण्ड इन मानसिक बंधनो की कैद से 'छुटकारा' नहीं करा सकते ।**

अनिक जतन नही होत छुटारा ।।
बहुतु सिआणप आगल भारा ।। **(पृ. 178)**

हउ हउ करते करम रत ता को भारु अफार ।।
प्रीति नही जउ नाम सिउ तउ एऊ करम बिकार ।। **(पृ. 252)**

बिनु गुर सबद न छूटसि कोइ ।।
पाखंडि कीन्है मुकति न होइ ।। (पृ. 839)

हउमै विचि भगति न होवई हुकमु न बुझिआ जाइ ।।
हउमै विचि जीउ बंधु है नामु न वसै मनि आइ ।। (पृ. 560)
तीरथ बरत अरु दान करि मन मै धरै गुमानु ।।
नानक निहफल जात तिह जिउ कुंचर इसनानु ।। (पृ. 1428)

गिआन धिआन सिमरण सहंस लरव पति वडिआई ।
हउमै अंदरि वरतणा दरि थाइ न पाई । (वा. भा. गु. 38@15)

किसी रोग के इलाज के लिए पहले रोग का ज्ञान तथा **'निदान'** होना आवश्यक है। **सही निदान अथवा निरीक्षण के बिना** रोग का इलाज नहीं हो सकता या गलत होगा । इसलिए **हमारे 'मानसिक बंधनों' के विषय में हमें सूझ/बूझ अथवा अनुभव होना अनिवार्य है।**

तिही गुणी त्रिभवणु विआपिआ भाई गुरमुखि बूझ बुझाइ ।।
राम नामि लगि छूटीऐ भाई पूछहु गिआनीआ जाइ ।। (पृ. 603)
माई मै किहि बिधि लरवउ गुसाई ।।
महा मोह अगिआनि तिमरि मो मनु रहिओ उरझाई ।। रहाउ ।।
सगल जनम भरम ही भरम खोइओ नह असथिरु मति पाई ।।
बिखिआ सकत रहिओ निस बासुर नह छूटी अधमाई ।। (पृ. 632)
ए मन मेरिआ ता छुटसी जा भरमु चुकाइसी राम ।। (पृ 1113)

काजी मुलां होवहि सेरव ।।
जोगी जंगम भगवे भेरव ।।
को गिरही करमा की संधि ।।
बिनु बूझे सभ खड़ीअसि बंधि ।। (पृ. 1169)

जुगि जुगि मेरु सरीर का बासना बधा आवै जावै ।
फिरि फिरि फेरि वटाईऐ
गिआनि होइ भरमु कउ पावै । (वा. भा. गु. 1@15)

जब रोग का सही **निदान** (diagnosis) हो जाये, तभी उस का सही इलाज हो सकता है ।

इसी प्रकार साध संगत में विचरण करते हुए हमें अपने **'मानसिक बंधनों' का ज्ञान या अनुभव हो जाये, तब ही हम इन अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक बंधनों से बचने या छुटकारा पाने के लिए कोई प्रयत्न कर सकते हैं ।**

गली भिसति न जाईऐ छुटै सचु कमाइ ।। (पृ. 141)

बाधे जम की जेवरी मीठी माइआ रंग ।।
भ्रम के मोहे नह बुझहि सो प्रभु सदहू संग ।।
लेखै गणत न छूटीऐ काची भीति न सुधि ।।
जिसहि बुझाए नानका तिह गुरमुखि निरमल बुधि ।। (पृ. 252)

गिआनु धिआनु सभु कोई रवै ।।
बांधनि बांधिआ सभु जगु भवै ।। (पृ. 728)

फूटो आंडा भरम का मनहि भइओ परगासु ।।
काटी बेरी पगह ते गुरि कीनी बंदि खलासु ।। (पृ. 1002)

गुरबाणी में हमारे इन शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक बंधनो से छुटकारा पाने या **इनसे मुक्त होने के लिए निम्नलिखित साधन दर्शाये गये हैं ।**

1. **'नाम/सिमरन'** — अथवा भक्ति द्वारा जीव के बंधन कट सकते हैं —

सो ऐसा हरि नामु जपीऐ मन मेरे
जो अंती अउसरि लए छडाए ।। (पृ. 89)

सिमरत नामु काटे सभि फाहे ।। (पृ. 104)

त्रिबिधि बंधन तूटहि गुर सबदी
गुर सबदी मुकति करावणिआ ।। (पृ. 127)

सोधत सोधत सोधि बीचारा ।।
बिनु हरि भजन नही छुटकारा ।। (पृ. 260)

माइआ मोहि जगु बाधा जमकालि ।।
बांधा छूटै नामु सम्हालि ।। (पृ. 412)

हरि जपि माइआ बंधन तूटे ।। (पृ. 497)

टूटे माइआ के बंधन फाहे हरि राम नाम लिव लागे ।। (पृ. 527)

नानक नामु समालि तूं बधा छुटहि जितु ।। (पृ. 729)

सो किछु करि जितु छुटहि परानी ।।

हरि हरि नामु जपि अंम्रित बानी ।। (पृ. 741)

कहु नानक बंधन काटन कउ मै सतिगुरु पुरखु धिआवत हे ।।

(पृ. 822)

जिन हरि जपिआ तिन फलु पाइआ
सभि तूटे माइआ फंदे ।। (पृ. 800)

जन नानक अनदिनु नामु जपहु हरि संतहु
इहु छूटण का साचा भरवासा ।। (पृ. 860)

नामु निधानु धिआइ मन अटल ।।
ता छूटहि माइआ के पटल ।। (पृ. 891)

तोड़े बंधन होवै मुकतु सबदु मंनि वसाए ।। (पृ. 920)

अनदिनु हरि हरि धिआइओ हिरदै मति गुरमति दूरव विसारी ।।
सभ आसा मनसा बंधन तूटे हरि हरि प्रभि किरपा धारी ।। (पृ. 1262)

2. **'साध संगत'** अथवा **'सत संगत'** द्वारा जीव के 'बंधन' टूट सकते हैं —

जिन तूं सेविआ भाउ करि सेई पुरख सुजान ।।
तिना पिछै छुटीऐ जिन अंदरि नामु निधानु ।। (पृ. 52)

टूटे बंधन जासु के होआ साधू संगु ।। (पृ. 252)

साधा सरणी जो पवै सो छुटै बधा ।। (पृ. 320)

भए क्रिपाल दइआल प्रभ मेरे
साधसंगति मिलि छूटे ।। (पृ. 497)

जब ते साधू संगु भइआ तउ छोडि गए निगहार ।।
जिस की अटक तिस ते छुटी तउ कहा करै कोटवार ।। (पृ. 1002)
साधसंगि तुटहि हउ बंधन एको एकु निहालीऐ ।। (पृ. 1019)

तूटे बंधन साधसंगु पाइआ ।।
कहु नानक गुरि रोगु मिटाइआ ।। (पृ. 1141)

साध संगति मिलि बंद खलासी । (वा. भा. गु. 39@17)

3. **'प्रभु की ओट'** अथवा **'शरण'** लेने से हमारे बंधन कट सकते हैं —

तिसु सरणाई छुटीऐ कीता लोड़े सु होइ ।। (पृ. 45)

महा बिखमु संसारु विरलै पेखिआ ।।
छूटनु हरि की सरणि लेखु नानक लेखिआ ।। (पृ. 398)

नानक राम नाम सरणाई ।।
सतिगुरि राखे बंधु न पाई ।। (पृ. 416)

फफै फाही सभु जगु फासा जम कै संगलि बंधि लइआ ।।
गुर परसादी से नर उबरे
जि हरि सरणागति भजि पइआ ।। (पृ. 433)

प्रभ की ओट गही तउ छूटो ।। (पृ. 673)

कहु नानक बंधन छुटे सतिगुर की सरना ।। (पृ. 809)

ता की गही मन ओट ।। (पृ. 894)
बंधन ते होई छोट ।।

बंधन तोड़ि चरन कमल द्रिड़ाए
एक सबदि लिव लाई ।। (पृ. 915)

गुरबाणी अनुसार किसी अन्य कर्म&क्रिया, पाठ&पूजा, ज्ञान&ध्यान, योग साधना आदि द्वारा जीव का मानसिक बंधनों से छुटकारा नहीं हो सकता —

बिनु हरि नाम न छुटीऐ गुरमति मिलै मिलाइ ।। (पृ. 59)

कथनै कहणि न छुटीऐ ना पड़ि पुसतक भार ।। (पृ. 59)

अनिक जतन नही होत छुटारा ।।
बहुतु सिआणप आगल भारा ।। (पृ. 178)

कहु नानक इहु ततु बीचारा ।।
बिनु हरि भजन नाही छुटकारा ।। (पृ. 188)

बिनु गुर सबद न छूटीऐ देखहु वीचारा ।।
जे लख करम कमावही बिनु गुर अंधिआरा ।। (पृ. 229)

रे मन बिनु हरि जह रचहु तह तह बंधन पाहि ।।
जिह बिधि कतहू न छूटीऐ साकत तेऊ कमाहि ।। (पृ. 252)

अनिक उपाव न छूटनहारे ।।
सिंम्रिति सासत बेद बीचारे ।। (पृ. 288)

करम धरम सभि बंधना पाप पुंन सनबंधु ।।
ममता मोह सु बंधना पुत्र कलत्र सु धंधु ।। (पृ. 551)

बिनु गुर बंधन टूटहि नाही गुरमुखि मोख दुआरा ।।
करम करहि गुर सबदु न पछाणहि
मरि जनमहि वारो वारा ।। (पृ. 602)

बंधन काटै सो प्रभू जा कै कल हाथ ।।
अवर करम नही छूटीऐ राखहु हरि नाथ ।। (पृ. 815)

बिनु गुर सबद न छूटसि कोइ ।।
पाखंडि कीन्है मुकति न होइ ।। (पृ. 839)

पुसतक पाठ बिआकरण वखाणै संधिआ करम तिकाल करै ।।
बिनु गुर सबद मुकति कहा प्राणी
राम नाम बिनु उरझि मरै ।। (पृ. 1127)

कोटि करम बंधन का मूलु ।।
हरि के भजन बिनु बिरथा पूलु ।। (पृ 1149)

जाप ताप नेम सुचि संजम नाही इन बिधे छुटकार ।।
गरत घोर अंध ते काढ़हु प्रभ नानक नदरि निहारि ।। (पृ. 1301)

'बंधन छूटन' सम्बधित विचारों को और समझाने तथा स्पष्ट करने के लिए कुछ संक्षिप्त **नुक्ते** प्रस्तुत किये जाते हैं । **इन महत्त्वपूर्ण नुक्तों को समझ कर, अनुभव करके दृढ़ करने की आवश्यकता है —**

— अकाल पुरुष ने जब इस सृष्टि का सृजन किया, तब इसके साथ ही जीवों में 'अहम्' अथवा **'मैं/मेरी' का अहसास प्रविष्ट करा दिया ।**

— अहम् द्वारा हमारे मन में **'अहम्मयी' ख्याल उत्पन्न होते हैं, जिनके आधार पर हम कर्म करते हैं ।**

— **अहम्मयी** मन से हम **'कर्म बद्ध' होकर कर्म करते तथा परिणाम भोगते हैं ।**

— इस प्रकार हम अनेक जन्मों से **'कर्मों के चक्र' में पड़ कर अभ्यास करते आये हैं तथा स्वयं घड़े कर्मों के अटूट बंधनों में फंसे हुए हैं ।**

— इन अहम् के **'कर्म बंधनों' की कैद में समस्त सृष्टि फँसी हुई है – परन्तु किसी को भी अहसास नहीं है कि वह 'कर्म बंधनों' के सदीवी गुलाम हैं।**

— साधारण जनता को तो अपने **कर्म–बंधनों** की सूझ नहीं है, परन्तु **आश्चर्य की बात है** कि ज्ञानी ध्यानी, विद्वान, वैज्ञानिक, फिलोस्फर तथा धर्म के 'ठेकेदारों' को भी **इन कर्म बंधनो का अहसास नहीं होता – तभी वे भी 'अहम्मयी' लोगों की भाँति, अहम् में कर्म करते तथा परिणाम भोगते हैं ।**

— इन 'कर्म&बंधनों' को कोई विरला बख्शा हुआ गुरमुख जन ही **अनुभव द्वारा बूझ सकता है तथा इसकी कैद में से मुक्त हो सकता है।**

— **साध संगति में विचरण करते हुए नाम&सिमरन द्वारा ही अकाल पुरुष के 'हुकुम परायण' हो कर हमारे बंधन टूट सकते हैं ।**

इस **'बंधन छूटन'** विषय को अनुभव करने के लिए गुरबाणी की निम्नलिखित चुनी हुई पंक्तियाँ **सहायक हो सकती हैं –**

हउ हउ करत बंधन महि परिआ नह मिलीऐ इह जुगता ।।(पृ. 642)

गिआनु धिआनु सभु कोई रवै ।।
बांधनि बांधिआ सभु जगु भवै ।। (पृ. 728)

फासन की बिधि सभु कोऊ जानै छूटन की इकु कोई ।।(पृ. 331)

सोधत सोधत सोधि बीचारा ।।
बिनु हरि भजन नही छुटकारा ।। **(पृ. 260)**

जन नानक अनदिनु नामु जपहु हरि संतहु
इहु छुटण का साचा भरवासा ।। (पृ. 860)

समाप्त